ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 2, March 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

भारत में बढ़ता शहरीकरण एवं उसका आदिवासियों पर प्रभाव

Shivshankar Meena

Assistant Professor in Geography, SPNKS Govt. PG College, Dausa, Rajasthan, India

सार

- शहरीकरण का तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या की आवाजाही से है, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के अनुपात में कमी एवं समाज का इस परिवर्तन के साथ अनुकूलन से है।

शहरीकरण का कारण:

- जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि: यह तब होता है जब मृत्यु दर से जन्म दर अधिक हो जाती है।
- ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में प्रवास: यह 'Pull' (जो लोगों को शहरी क्षेत्रों की ओर आकर्षित करते हैं) और 'Push' (जो लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों से दूर करते हैं) कारकों द्वारा संचालित होता है।
  - रोज़गार के अवसर, शैक्षणिक संस्थान और शहरी जीवनशैली आकर्षक करने वाले मुख्य कारक हैं।
  - रहने की खराब स्थिति, शैक्षिक और आर्थिक अवसरों की कमी तथा खराब स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ ऐसे मुख्य कारक जो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में जाने के लिये प्रेरित करते हैं।

वैश्विक शहरीकरण:

- सबसे अधिक शहरीकृत क्षेत्रों में उत्तरी अमेरिका (वर्ष 2018 तक शहरी क्षेत्रों में रहने वाली आबादी 82%), लैटिन अमेरिका और कैरिबियन (81%), यूरोप (74%) तथा ओशिनिया (68%) शामिल हैं।
- एशिया में शहरीकरण का स्तर लगभग 50% है।
- अफ्रीका में ज़्यादातर ग्रामीण आबादी है, इसकी 43% आबादी शहरी क्षेत्रों में रहती है।

परिचय

भारत में शहरीकरण

- शहरीकरण की संभावनाएँ:
  - संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक मामलों के विभाग द्वारा तैयार की गई 'विश्व शहरीकरण संभावनाएँ, 2018' रिपोर्ट के अनुसार, भविष्य में दुनिया की शहरी आबादी के आकार में वृद्धि कुछ ही देशों में अत्यधिक केंद्रित रहने की उम्मीद है।
  - वर्ष 2018 से 2050 के मध्य दुनिया की शहरी आबादी की वृद्धि में भारत, चीन और नाइजीरिया का योगदान 35% रहने का अनुमान है।
  - वर्ष 2050 तक भारत के शहरी निवासियों की संख्या में 416 मिलियन की बढ़ोतरी होने का अनुमान है।
  - भारत की जनगणना 2011 के अनुसार, वर्तमान में भारत की जनसंख्या 31.1% के शहरीकरण स्तर के साथ वर्ष 2011 में 1210 मिलियन थी।

राज्यों की स्थिति:

- शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या:

- देश की 75% से अधिक शहरी आबादी निम्नलिखित 10 राज्यों में है: महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान और केरल।
- महाराष्ट्र 50.8 मिलियन व्यक्तियों (देश की कुल शहरी आबादी का 13.5%) के साथ सबसे आगे है।
- उत्तर प्रदेश में लगभग 44.4 मिलियन शहरी आबादी है, इसके बाद तमिलनाडु का स्थान है।[1,2,3]

- उच्च स्कोर वाले राज्य:
  - 62.2% शहरी आबादी के साथ गोवा सबसे अधिक शहरीकृत राज्य है।
  - तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र और गुजरात ने 40% से अधिक शहरीकरण की स्थिति प्राप्त कर ली है।
  - उत्तर-पूर्वी राज्यों में मिज़ोरम 51.5% शहरी आबादी के साथ सबसे अधिक शहरीकृत है।
- कम स्कोर वाले राज्य: बिहार, ओडिशा, असम और उत्तर प्रदेश में शहरीकरण का स्तर राष्ट्रीय औसत से कम है।
- केंद्रशासित प्रदेश: दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और चंडीगढ़ केंद्रशासित प्रदेश में क्रमशः 97.5% और 97.25% शहरी आबादी है। सबसे अधिक शहरीकरण इन्हीं केंद्रशासित प्रदेशों का हुआ है, इसके बाद दमन और दीव तथा लक्षद्वीप (दोनों स्थानों में 75% से ऊपर शहरीकरण) का स्थान है।

शहरी विकास के संबंध में भारत की वैश्विक प्रतिबद्धता:

- एसडीजी लक्ष्य 11 के तहत सतत् विकास को प्राप्त करने के लिये अनुशंसित तरीकों में से एक शहरी नियोजन को बढ़ावा देना है।
- यूएन-हैबिटेट के न्यू अर्बन एजेंडा को वर्ष 2016 में हैबिटेट III में अपनाया गया था।
- यह शहरी क्षेत्रों की योजना, निर्माण, विकास, प्रबंधन और सुधार के सिद्धांतों को सामने रखता है।
- यूएन-हैबिटेट (वर्ष 2020) सुझाव देता है कि किसी शहर की स्थानिक स्थितियाँ, सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय मूल्य कल्याण करने की उसकी शक्ति को बढ़ा सकते हैं।

पेरिस समझौता: भारत के राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (INDC) में वर्ष 2030 तक वर्ष 2005 के स्तर से सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की उत्सर्जन तीव्रता में 33 से 35 प्रतिशत की कमी लाना।

शहरीकरण के लिये भारत की पहल:

- शहरी विकास से संबंधित योजनाएँ/कार्यक्रम:
  - स्मार्ट सिटीज़
  - अमृत मिशन
  - स्वच्छ भारत मिशन-शहरी
  - हृदय
  - प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी
- झुग्गीवासियों/शहरी गरीबों के लिये सरकारी पहल
  - प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना
  - आत्मनिर्भर भारत अभियान (आत्मनिर्भर भारत)[5,7,8]

शहरी जीवन का महत्त्व

- सुविधाओं तक आसान पहुँच: शहरी जीवन में साक्षरता और शिक्षा का उच्च स्तर, बेहतर स्वास्थ्य, लंबी जीवन प्रत्याशा, सामाजिक सेवाओं तक अधिक पहुँच एवं सांस्कृतिक एवं राजनीतिक भागीदारी के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं।
  - शहरीकरण सामान्य रूप से अस्पतालों, क्लीनिकों और स्वास्थ्य सेवाओं तक आसान पहुँच से जुड़ा है।

- इन सेवाओं से आपातकालीन देखभाल के साथ-साथ सामान्य स्वास्थ्य में सुधार होता है।

- सूचना तक पहुँच: रेडियो और टेलीविज़न जैसे सूचना के स्रोतों तक आसान पहुँच के लाभ भी हैं, जिनका उपयोग आम जनता को स्वास्थ्य के बारे में जानकारी देने के लिये किया जा सकता है।
  - उदाहरण के लिये कस्बों और शहरों में रहने वाली महिलाओं को परिवार नियोजन के बारे में अधिक जानकारी की संभावना होती है जिसके परिणामस्वरूप परिवार के आकार में कमी आती है और बच्चों का जन्म दर कम रहता है।
- व्यक्तिवाद: यह अवसरों की बहुलता, सामाजिक विविधता, निर्णय लेने को लेकर पारिवारिक और सामाजिक नियंत्रण की कमी तथा व्यक्ति द्वारा स्वयं के लिये निर्णय लेने की सुविधा प्रदान करता है और अपने स्वयं के कॅरियर एवं कार्यों को चुनने में मदद करता है।

शहरीकरण से जुड़े मुद्दे

- अत्यधिक जनसंख्या दबाव: एक ओर ग्रामीण-शहरी प्रवास शहरीकरण की गति को तेज़ करता है, दूसरी ओर, यह मौजूदा सार्वजनिक संसाधनों पर अत्यधिक जनसंख्या दबाव पैदा करता है।
  - नतीजतन शहर मलिन बस्तियों, अपराध, बेरोज़गारी, शहरी गरीबी, प्रदूषण, भीड़भाड़, खराब स्वास्थ्य और कई विकृत सामाजिक गतिविधियों जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं।
- मलिन बस्तियों की बढ़ती संख्या: देश में लगभग 13.7 मिलियन झुग्गी-झोपड़ियाँ 65.49 मिलियन लोगों को आश्रय देते हैं।
  - लगभग 65% भारतीय शहरों के बाहरी इलाके में झुग्गियाँ हैं, जहाँ लोग एक-दूसरे से सटे छोटे घरों में रहते हैं।
- अपर्याप्त आवास: शहरीकरण की अनेक सामाजिक समस्याओं में से आवास की समस्या सबसे अधिक चिंताजनक है।
  - शहरी आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी की स्थिति में और अत्यधिक भीड़भाड़ वाले स्थानों में रहता है।
  - भारत में आधे से अधिक शहरी परिवार एक कमरे में रहते हैं, जिसमें प्रति कमरा औसतन 4.4 व्यक्ति रहते हैं।
- अनियोजित विकास: एक विकसित शहर के निर्माण मॉडल की तुलना में अनियोजित विकास के कारण शहरों में अमीर और गरीब के बीच प्रचलित द्वंद्व मज़बूत होता है।
- महामारी-प्रेरित समस्याएँ: कोविड-19 महामारी ने शहरी गरीबों या झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों की परेशानी को बढ़ा दिया है।
  - अचानक पूर्ण कोविड लॉकडाउन के कारण झुग्गीवासियों की आजीविका कमाने की क्षमता बुरी तरह प्रभावित हुई।
- गैर-समावेशी कल्याण योजनाएँ: शहरी गरीबों की कल्याणकारी योजनाओं का लाभ अक्सर लक्षित लाभार्थियों के एक छोटे से हिस्से तक ही पहुँचता है।
  - अधिकांश राहत कोष और लाभ झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों तक नहीं पहुँचता है, इसका मुख्य कारण यह है कि इन बस्तियों को सरकार द्वारा आधिकारिक तौर पर मान्यता नहीं दी जाती है।[9,10,11]
- सफल विकास के लिये सतत् शहरीकरण: सतत् विकास शहरी विकास के सफल प्रबंधन पर निर्भर करता है, विशेष रूप से निम्न आय और निम्न-मध्यम आय वाले देशों में जहाँ शहरीकरण की गति सबसे तेज़ होने का अनुमान है।
  - शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच संबंधों को मज़बूत करते हुए उनके मौजूदा आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय संबंधों पर ध्यान देकर शहरी एवं ग्रामीण दोनों के निवासियों के जीवन को बेहतर बनाने के लिये एकीकृत नीतियों की आवश्यकता है।
- स्वास्थ्य सुविधाओं और कल्याण योजनाओं तक पहुँच में सुधार: मलिन बस्तियों में मुफ्त टीके, खाद्य सुरक्षा और पर्याप्त आश्रय तक पहुँच सुनिश्चित करने के साथ-साथ कल्याण एवं राहत योजनाओं की दक्षता में तेज़ी लाना।
  - मलिन बस्तियों में स्वच्छता और परिवहन सुविधाओं में सुधार तथा क्लीनिक एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थापना करना।
  - उन गैर-लाभकारी संस्थाओं और स्थानीय सहायता निकायों को सहयोग प्रदान करना, जिनकी इन हाशिये के समुदायों तक बेहतर पहुँच है।

- शहरीकरण के लिये नया दृष्टिकोण: शहरी नियोजन और प्रभावी शासन के नए दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित करना समय की आवश्यकता है।
  - टिकाऊ, मज़बूत और समावेशी बुनियादी ढाँचे के निर्माण के लिये आवश्यक कार्रवाई की जानी चाहिये।
  - शहरी गरीबों के सामने आने वाली चुनौतियों को बेहतर ढंग से समझने के लिये टॉप-डाउन दृष्टिकोण के बजाय, बॉटम-अप दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये।

जब शहरों का विस्तार होना शुरू हो जाता है, या ग्रामीण क्षेत्रों का शहरीकरण शुरू हो जाता है, तो बुनियादी ढाँचे को विकसित करने की ज़रूरत होती है - सड़कें बनाने की ज़रूरत होती है, परिवहन प्रणालियाँ स्थापित करने की ज़रूरत होती है, और सीवेज लाइनें और पीने के पानी के पाइप बिछाने की ज़रूरत होती है।
लेकिन क्या होता है जब कस्बों और शहरों का विस्तार निकटवर्ती भूमियों में होने लगता है, और वे भूमियाँ आदिवासी समुदायों की हो जाती हैं?
झारखंड में, दो अधिनियम हैं - छोटा नागपुर किरायेदारी अधिनियम , और संथाल परगना किरायेदारी अधिनियम - जो आदिवासी लोगों के उनकी भूमि के अधिकार की रक्षा करते हैं, और इसलिए गैर-आदिवासी आबादी को उनकी भूमि की बिक्री पर रोक लगाते हैं ।

विचार-विमर्श

हालाँकि, पिछले कुछ वर्षों में, इन अधिनियमों में संशोधन हुए हैं जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में आदिवासी लोगों की स्थिति कमजोर हुई है, और शहरी क्षेत्रों में भी इससे मदद नहीं मिली है। वर्तमान में, इन संशोधनों के खिलाफ आदिवासी समुदायों द्वारा दायर 64,000 मुकदमे झारखंड के उच्च न्यायालय में लंबित हैं।[12,15,17]
विकास के लिए भूमि की आवश्यकता होती है, जैसा कि आदिवासी समुदायों को भी है
आदर्श रूप से, एक शहर की विकास योजना को निवासियों की जरूरतों पर विचार करना चाहिए - सड़कों, परिवहन, सार्वजनिक स्थानों और वाणिज्यिक और आवासीय क्षेत्रों के संदर्भ में। इसलिए, एक शहर के नगर निगम के लिए, सही स्थानों पर भूमि तक पहुंचने की क्षमता महत्वपूर्ण है।
जल, जंगल, और जानवर (जल, वन और जानवर) के साथ उनके सहजीवी संबंध को देखते हुए, भूमि और जंगलों का स्वामित्व और उन तक पहुंच आदिवासी लोगों की जीवन शैली के लिए भी महत्वपूर्ण रही है।

भूमि और जंगलों का स्वामित्व और उन तक पहुंच आदिवासी लोगों की जीवन शैली के लिए महत्वपूर्ण रही है।

भले ही शहर आदिवासी समुदायों के स्वामित्व वाली भूमि खरीदना नहीं चाहता है, लेकिन इन क्षेत्रों से गुजरने वाले बुनियादी ढांचे का विकास करना चाहता है, समुदायों का विरोध है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार को किसी झुग्गी-झोपड़ी में सीवेज लाइन ले जानी है, तो उन्हें आदिवासी भूमि के नीचे से गुजरना पड़ सकता है। और कोई भी उन्हें सीवेज पाइप डालने के लिए अपनी ज़मीन खोदने देने को तैयार नहीं है।
समुदायों का विरोध वैध है क्योंकि अतीत में इसी तरह के प्रयासों से भूमि हड़पने के घोटाले हुए हैं और आदिवासी समुदायों से भूमि को कॉर्पोरेट्स को हस्तांतरित किया गया है। इसके अलावा, सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि की बिक्री के लिए मुआवजे की दरें आखिरी बार 1970 में प्रदान की गई थीं - इसे संशोधित करने की आवश्यकता है और आदिवासी आबादी को बाजार दरों से ऊपर की पेशकश की जानी चाहिए।
सही काम करने के लिए, सरकार को पुनर्वास और पुनर्स्थापन को भी विकास प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में सोचने की जरूरत है, और उन्हें प्रभावित व्यक्तियों की सक्रिय भागीदारी के साथ तैयार किया जाना चाहिए।
इस सब के लिए बहुत अधिक बातचीत की आवश्यकता है, जिसे करने के लिए सरकार न तो इच्छुक है और न ही इच्छुक है।
आदिवासी लोग अपनी जमीन का मूल्य पता करने में असमर्थ हैं
शहरीकरण के लगभग सभी मामलों में, जैसे-जैसे शहर आसन्न कृषि भूमि में विस्तारित होते हैं, किसान अपनी भूमि का मूल्य अनलॉक करने में सक्षम होते हैं; वे अपनी जमीन या तो निजी डेवलपर्स या शहर के अधिकारियों को बेच सकते हैं और बिक्री का लाभ उठा सकते हैं। हालाँकि, जनजातीय समुदायों के मामले में, मालिक ज़मीन की बाज़ार माँग का लाभ उठाने में सक्षम नहीं हैं।
झारखंड में भूमि स्वामित्व का अंतिम सर्वेक्षण 1934 में किया गया था; इसलिए इस पर दर्ज अंतिम नाम वर्तमान पीढ़ी के पूर्वज थे। चूँकि उन्हें बाज़ार में खरीदने और बेचने की अनुमति नहीं थी, इसलिए उनकी संतानों में से किसी ने भी भूमि रिकॉर्ड को अद्यतन नहीं करवाया, क्योंकि ऐसा करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं था।

क्या होता है जब कस्बों और शहरों का विस्तार निकटवर्ती भूमियों में होने लगता है, और वे भूमियाँ आदिवासी समुदायों की हो जाती हैं? | फोटो सौजन्य: विकिमीडिया कॉमन्स

अब तक मूल जमींदारों के वंशज एक साथ निवास करते थे। भूमि पूरी रहेगी, और विभिन्न परिवार इस सामान्य पारिवारिक भूमि पर अपने घर बनाएंगे। किसी को इसकी परवाह नहीं थी कि इसका बँटवारा उनके बीच कैसे हुआ; इसलिए, भूमि का कोई स्पष्ट स्वामित्व नहीं है।

परिणामस्वरूप, ये भूमि मालिक न तो वाणिज्यिक ऋण देने वाले संस्थानों से आवास वित्त, या पीएमएवाई जैसी सरकारी योजनाओं तक पहुंचने में असमर्थ हैं - जो उन्हें अपनी जमीन पर घर बनाने के लिए लाभ देगी।[15,18,19]

जबकि सरकार का दावा है कि सब कुछ डिजिटल हो गया है, भूमि रिकॉर्ड को अद्यतन करने की प्रक्रिया अपर्याप्त और त्रुटिपूर्ण है।

उपरोक्त में से किसी एक तक पहुंचने के लिए, भूमि रिकॉर्ड को अद्यतन करने की आवश्यकता है। लेकिन ऐसा करना कठिन है. जबकि सरकार का दावा है कि सब कुछ डिजिटल हो गया है, यह प्रक्रिया अपर्याप्त और त्रुटिपूर्ण है। इसके अलावा, हाशिए पर रहने वाले आदिवासी समुदायों के पास ऑनलाइन सिस्टम को समझने के साधन नहीं हैं, और सरकारी प्रणाली से निपटने में होने वाली लंबी देरी के कारण उन्हें मजदूरी में नुकसान का सामना करना पड़ता है।

ऑफ़लाइन प्रक्रिया अभी भी बहुत बोझिल है - मूल भूमिधारकों के वंशजों की पहचान करनी होगी, उनके बीच विभाजन के अनुपात पर सहमति बनानी होगी, और फिर उपविभाजन सुनिश्चित करने के लिए भूमि का सीमांकन करना होगा।

उपरोक्त सभी बाधाओं को देखते हुए, और यह देखते हुए कि उनकी भूमि का कोई बाज़ार नहीं है, उनके लिए इस प्रक्रिया से गुजरने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं है।

चूंकि जमीन गैर-आदिवासी लोगों द्वारा खरीदी और बेची नहीं जा सकती, इसलिए आदिवासी समुदाय के भीतर ही शक्तिशाली और प्रभावशाली लोगों का एक वर्ग बढ़ रहा है, जो छोटी जोत वाले, अधिक कमजोर समुदाय के सदस्यों से बहुत कम दरों पर जमीन खरीद रहे हैं - बहुत अधिक 'बाज़ार' दरों से कम।

इसलिए अधिकांश आदिवासी समुदाय को दोहरा नुकसान उठाना पड़ता है। सबसे पहले, वे अपनी जमीन पर बेहतर घर नहीं बना सकते क्योंकि वे सरकार या बाजार के माध्यम से आवास वित्त तक पहुंचने में असमर्थ हैं। दूसरा, वे अपनी जमीन के लिए बाजार दर प्राप्त करने में असमर्थ हैं, ताकि उस आय का उपयोग अन्य औपचारिक आवास खरीदने में कर सकें।

समुदाय अपनी पारंपरिक आजीविका को भी लुप्त होते देख रहे हैं

जैसे-जैसे उनका परिवेश अधिक शहरी होता जा रहा है, हम कम और कम आदिवासी समुदायों को अपनी भूमि पर कृषि करते हुए देखना शुरू कर रहे हैं। समुदाय के सदस्य निर्माण जैसे दैनिक-मजदूरी वाले व्यवसायों और अन्य सेवा-उन्मुख उद्योगों की ओर रुख कर रहे हैं क्योंकि कृषि का उनका पारंपरिक व्यवसाय गायब हो गया है।

जैसे-जैसे उनका परिवेश अधिक शहरी होता जा रहा है, हम कम और कम आदिवासी समुदायों को अपनी भूमि पर कृषि करते हुए देखना शुरू कर रहे हैं।

पानी भी एक मुद्दा है, जो कृषि के क्षेत्र में उनकी बाधाओं को बढ़ाता है। इस तथ्य के बावजूद कि झारखंड में पर्याप्त वर्षा होती है, आदिवासी आबादी को पाइप से पानी नहीं मिलता है। हालांकि यह सुनिश्चित करने के लिए नीतियां हैं कि इन क्षेत्रों को पानी मिले, लेकिन जरूरी नहीं कि वे दो कारणों से व्यवहार में आएं - एक तो पानी और स्वच्छता के संबंध में पर्याप्त बुनियादी ढांचे की कमी है, और दूसरा वह प्रक्रिया है जिसका पालन पानी प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए। पाइप कनेक्शन इतना जटिल और समय लेने वाला है कि गरीब लोग इन प्रणालियों का उपयोग नहीं कर सकते।

रांची के अधिकांश आदिवासी सामुदायिक क्षेत्रों में सामुदायिक कुएं और घरेलू स्तर के कुएं दोनों हैं। हालाँकि, चूँकि रांची एक पठार पर है, इसलिए गर्मियों के महीनों में कुओं में पानी बनाए रखना मुश्किल है। इसके अलावा, भले ही उनकी जमीन पर कुएं हैं, लेकिन उनमें से पानी तेजी से गायब हो रहा है क्योंकि पड़ोसी औपचारिक आवास समितियों ने बोरवेल बनाए हैं जो पुराने कुओं को सुखा रहे हैं।

विकल्पों की कमी का असर आदिवासी समुदायों पर पड़ रहा है

कृषि गतिविधि और आय के नुकसान के साथ-साथ जीवन की गुणवत्ता (बेहतर आवास और शहरी सेवाओं के माध्यम से) में सुधार करने में असमर्थता, दोनों के संदर्भ में व्यवहार्य विकल्पों की कमी आदिवासी समाज और समुदायों को प्रभावित कर रही है। झारखंड आर्थिक सर्वेक्षण 2015-2016 इस बात पर प्रकाश डालता है कि झारखंड की बेरोजगारी दर 3.1 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत 2.7 प्रतिशत से ऊपर है। धीमे औद्योगीकरण और टिकाऊ भूमि सुधारों की कमी के कारण नौकरियों की कम वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप उच्च स्तर का प्रवासन होता है, जो फिर मानव तस्करी का कारण बनता है ।

संक्षेप में, उनके जीवन का पूरा तरीका तेजी से बदल रहा है, और बदतर के लिए। चिंता की बात यह है कि अगर वे उस तरह के बुनियादी ढांचे से नहीं जुड़े हैं जो औपचारिक क्षेत्र के लिए उपलब्ध है, और उनकी अपनी परंपराएं तेजी से गायब हो रही हैं, तो एक मुद्दा होगा। इसलिए हमें आदिवासी समुदाय के जीवन और आजीविका के साथ-साथ शहर के विकास दोनों के लिए इस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है[20,21,22]

हमें शहरी स्थानों के निकट रहने वाले जनजातीय लोगों के हितों पर विचार करने की आवश्यकता है

अधिनियमों का गठन अच्छे विश्वास और जनजातीय लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया था; हालाँकि, शहरीकरण ने उन्हें कुछ हद तक अपने जीवन के तरीके को बदलने के लिए मजबूर किया है। वे भूमि की क्षमता को उजागर करने में असमर्थ हैं, और शक्तिशाली तत्वों द्वारा उनका शोषण किया जा रहा है - उनके समुदाय के भीतर और उसके बाहर दोनों जगह। इसलिए अब जमीनी हकीकतों को अधिक विस्तार से समझने, मौजूदा प्रावधानों की समीक्षा करने और शहरी जनजातीय लोगों के हितों की सेवा करने वाले संशोधित कानून पेश करने का समय आ गया है।
इसलिए हमें विस्थापन, पुनर्वास और पुनर्वास प्रक्रिया ढांचे में आदिवासी समुदायों को शामिल करने के लिए योजनाकारों की ओर से व्यापक ठोस प्रयास की आवश्यकता है। और उनमें न केवल वे लोग शामिल होने चाहिए जो सीधे तौर पर जमीन और अन्य संपत्ति खो देते हैं, बल्कि वे लोग भी शामिल होने चाहिए जो संपत्ति के ऐसे अधिग्रहण से प्रभावित होते हैं।[23,25,27]

परिणाम

वर्ष 2022 भारत में नौकरी चाहने वालों में से 8.3 प्रतिशत के बेरोजगार होने के साथ समाप्त हुआ। 31 दिसंबर 2022 को शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी दर 10 फीसदी और ग्रामीण बेरोजगारी दर 7.7 फीसदी थी.

यह डेटा सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई) द्वारा जारी किया गया था जो दैनिक आधार पर देश की बेरोजगारी दर की गणना और प्रकाशन करता है। बेरोजगारी दर एक महीने के लिए कुल अनुमानित बेरोजगार व्यक्तियों और कुल अनुमानित श्रम बल का अनुपात है।

शहरी बेरोज़गारी की दर आम तौर पर ग्रामीण से अधिक रहती है। लेकिन उत्तरार्द्ध को मुख्य रूप से अधिक गंभीर माना जाता है क्योंकि ग्रामीण बेरोजगारी के कारण अधिक गहरे हैं और इसलिए, शहरी बेरोजगारी की तुलना में इसका समाधान करना अधिक कठिन है।

घटती भूमि जोत का आकार, बुनियादी ढांचे की कमी - विशेष रूप से सिंचाई के बुनियादी ढांचे, नौकरी के अन्य अवसरों की कमी और वन संसाधनों की निरंतर कमी जैसे कारकों को ग्रामीण बेरोजगारी का मुख्य कारण माना जाता है। ये या तो अपरिवर्तनीय हैं या रातोंरात बदलना मुश्किल है।

मध्य भारतीय बेल्ट की विशेषता लहरदार भूभाग, बारहमासी जलधाराओं का अभाव, दैनिक जीवन के लिए लोगों की जंगल पर निर्भरता और सिंचाई के बुनियादी ढांचे की कमी है, जो इसे ग्रामीण रोजगार सृजन के मामले में सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र बनाती है। यह क्षेत्र आदिवासियों का हृदय स्थल भी है।

कम होल्डिंग आकार

भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण विभाग द्वारा कृषि जनगणना 2015-16 से पता चला कि परिचालन जोत का औसत आकार 1970-71 में 2.28 हेक्टेयर से घटकर 2015-16 में 1.08 हेक्टेयर हो गया। सीमांत (1 हेक्टेयर से कम भूमि वाले) किसान कुल कृषकों का 68.5 प्रतिशत से अधिक हैं और उनकी औसत जोत का आकार 0.38 हेक्टेयर है।

मध्य पठारी क्षेत्र में तो यह स्थिति और भी बदतर है। आदिवासी समुदायों में सीमांत किसानों का प्रतिशत अधिक है - झारखंड में लगभग 77 प्रतिशत और ओडिशा में 76 प्रतिशत सीमांत किसान हैं, दोनों राज्यों में आदिवासी आजीविका की स्थिति (SAL 2021) पर PRADAN की एक हालिया रिपोर्ट, एक राष्ट्रीय- स्तर गैर-लाभकारी, दिखाया गया।

ज़मीन की यह छोटी सी मात्रा ख़रीफ़ (मानसून) सीज़न के बाद घरों की सभी श्रम शक्तियों को नियोजित नहीं कर सकती, जब तक कि दूसरी फसल के लिए सिंचाई की सुविधा न हो। यहां तक कि ख़रीफ़ सीज़न में भी, घर की पूरी श्रम शक्ति पूरी तरह से तैनात नहीं होती है। परिणामस्वरूप, अधिकांश सीमांत किसान ख़रीफ़ सीज़न के दौरान भी कृषि श्रमिक के रूप में मजदूरी रोजगार की तलाश करते हैं।[28,29]

सिंचाई सुविधाओं का अभाव

कृषि जनगणना रिपोर्ट से पता चलता है कि भारत में कुल बोया गया क्षेत्र का लगभग 49 प्रतिशत सिंचित है। सीमांत किसानों की भूमि के लिए यह लगभग 54 प्रतिशत है।

हालाँकि, केंद्रीय पठार में स्थिति गंभीर दिखती है। एसएएल 21 से पता चलता है कि झारखंड में लगभग 19 प्रतिशत आदिवासी भूमि और ओडिशा में केवल 7 प्रतिशत आदिवासी भूमि पर सभी मौसम में सिंचाई की सुविधा है।

सामान्य सिंचाई मॉडल जैसे बड़े बांध या नदी लिफ्ट सिंचाई योजनाएं या तो व्यवहार्य नहीं हैं या सीमांत किसानों के लिए फायदेमंद नहीं हैं। इन-सीटू जल संचयन, मिट्टी की नमी संरक्षण, छोटी डायवर्जन संरचनाएं, अन्य कुछ वैकल्पिक समाधान हैं।

हालाँकि, केंद्रीय पठार के भीतर विभिन्न क्षेत्रों के लिए संदर्भ-विशिष्ट सिंचाई प्रोटोटाइप विकसित करने की आवश्यकता है।

संबंधित कहानियां

- दिसंबर में भारत में बेरोजगारी बढ़कर 8.3% हो गई; शहरी क्षेत्रों में 10% से अधिक: सीएमआईई
- नहीं, आर्थिक सुधार से मनरेगा में नौकरी की मांग में गिरावट नहीं आई है: विशेषज्ञ
- मनरेगा के लिए रिकॉर्ड 30 मिलियन नौकरियों की मांग ग्रामीण संकट को दर्शाती है

अन्य कार्य अवसरों का अभाव

3 मार्च, 2020 को केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के प्रेस सूचना ब्यूरो द्वारा साझा किए गए आंकड़ों के अनुसार, पिछले 20 वर्षों में खाद्यान्न के कुल उत्पादन में 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। खाद्य उत्पादन में कोई संदेह नहीं है। ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र में नौकरियाँ पैदा की हैं।

हालाँकि, उत्पादन में वह वृद्धि संपूर्ण ग्रामीण कार्यबल को खपाने के लिए बिल्कुल भी पर्याप्त नहीं है। मशीनीकरण और इसी अवधि के दौरान ग्रामीण आबादी में 17 प्रतिशत की वृद्धि ने ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक बेरोजगारी पैदा की है।

रोजगार के अवसरों की कमी ग्रामीणों को छोटी-मोटी नौकरियों की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर करती है। ग्रामीण रोजगार चाहने वालों को रोजगार के अवसर देने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) बनाया गया था। लेकिन धीरे-धीरे, मनरेगा का ध्यान परिसंपत्ति निर्माण पर केंद्रित हो गया और परिणामस्वरूप, यह ग्रामीण क्षेत्र में नौकरी चाहने वालों की रोजगार मांग को पूरा करने के बजाय अधिक आपूर्ति-संचालित हो गया।

मनरेगा की कम मजदूरी दर एक और मुद्दा था। कई राज्यों में, मनरेगा मजदूरी दर राज्य की न्यूनतम मजदूरी दर से कम थी।

घटते वन संसाधन

मध्य भारत के गांवों के लिए जंगल रोजगार का एक प्रमुख स्रोत रहे हैं। वन विभाग के लिए मज़दूर के रूप में काम करने के अलावा, ग्रामीण जंगल से विभिन्न गैर-लकड़ी वन उत्पादों को इकट्ठा करते हैं और बेचते हैं।

औपनिवेशिक युग के बाद से, लकड़ी की प्रजातियों पर वन विभाग के विशेष ध्यान ने जंगलों में गैर-लकड़ी वृक्ष प्रजातियों को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। एसएएल 21 रिपोर्ट से पता चला है कि गैर-लकड़ी वन उत्पादों की उपलब्धता घट रही है।

दीर्घकालिक योजना, निरंतर कार्रवाई की आवश्यकता

उपरोक्त कारकों के कारण, भारत में ग्रामीण बेरोजगारी पुरानी है, खासकर मध्य भारत में। इसलिए, इस स्थिति को बदलने के लिए दीर्घकालिक आधार पर सावधानीपूर्वक योजना और निरंतर कार्रवाई की आवश्यकता है।

एक प्रमुख रणनीति सिंचाई के बुनियादी ढांचे का निर्माण करना और छोटे और सीमांत किसानों के अधिक क्षेत्रों को दूसरी फसल के तहत लाना हो सकता है। हालाँकि, केंद्रीय पठारी क्षेत्र में जल संचयन और सिंचाई के लिए संदर्भ-विशिष्ट प्रोटोटाइप विकसित करने के लिए लंबी और गहन भागीदारी की आवश्यकता है।

PRADAN, SPS, FES और WOTR जैसे कई नागरिक समाज संगठन कई वर्षों से इस पर काम कर रहे हैं और उन्होंने ऐसे प्रोटोटाइप और मॉडल विकसित किए हैं जिन्हें व्यापक रूप से दोहराया जा सकता है।

फिर भी इस मोर्चे पर और काम करने की जरूरत है.

मनरेगा का फोकस फिर से रोजगार सृजन पर केंद्रित करना होगा। संपत्ति निर्माण एक उप-उत्पाद हो सकता है, मुख्य उद्देश्य नहीं। कई ओर से काम के दिन 100 दिन से बढ़ाकर 200 दिन करने और मजदूरी दर बढ़ाने की मांग उठ रही है.

साथ ही, अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 को इसकी सही भावना से लागू करना होगा। आदिवासियों और अन्य वन-निवास समुदायों को टिकाऊ उपयोग के लिए किसी भी सामुदायिक वन संसाधन की सुरक्षा, पुनर्जनन, संरक्षण या प्रबंधन का अधिकार मिलना चाहिए।[27,28,29]

निष्कर्ष

नतीजे बताते हैं कि जिस तरह से स्लम पदनाम को परिभाषित किया गया है वह शहरी आबादी के वर्णनात्मक लक्षण वर्णन के साथ-साथ सामुदायिक नुकसान और बाल स्वास्थ्य के बीच अनुभवजन्य सहयोग के परिमाण और महत्व दोनों के लिए मायने रखता है। दरअसल, स्लम परिभाषाओं के बीच महत्वपूर्ण विसंगति है कि किस घर को स्लम में स्थित माना जाए। ये परिणाम दृढ़ता से सुझाव देते हैं कि स्लम आवास की अवधारणा और माप के लिए शब्द की नीति प्रासंगिकता को देखते हुए और अधिक सैद्धांतिक

और अनुभवजन्य कार्य की आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा के बीच बेमेल, जिसका उपयोग विभिन्न देशों में झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों की तुलना करने के लिए किया जाता है,

चार स्लम पदनामों के बीच अपेक्षाकृत न्यूनतम ओवरलैप के लिए कई संभावित स्पष्टीकरण हैं। सबसे पहले, जनगणना 2001 में आयोजित की गई थी, लेकिन एनएफएचएस 2005-2006 में शुरू की गई थी, जिससे यह संभव हो गया कि जनगणना गणना और एनएफएचएस सर्वेक्षण अवलोकन और प्रतिवादी रिपोर्ट (मोंटाना एट अल।, आगामी) के बीच स्लम क्षेत्रों में काफी बदलाव आया, जो एक मुद्दा है। इन आंकड़ों का उपयोग करते हुए अध्ययनों में इस पर ध्यान नहीं दिया गया है (स्वामीनाथन और मुखर्जी, 2012)।). परिभाषा विसंगति का दूसरा कारण चार परिभाषाओं को बनाने वाले घटकों में महत्वपूर्ण भिन्नता हो सकता है। जबकि जनगणना की परिभाषा मुख्य रूप से अधिसूचना (यानी एक शासी निकाय द्वारा कानूनी निपटान के रूप में मान्यता) पर निर्भर करती है, अन्य परिभाषाएँ झुग्गी-झोपड़ियों में रहने से जुड़ी विभिन्न विशेषताओं से बनी हैं, जिनमें से एक परिभाषा अकेले गणनाकर्ता के अवलोकन पर आधारित है और दो अन्य भिन्न हैं। झुग्गी-झोपड़ी से संबंधित संकेतकों की संख्या के संदर्भ में उनकी कठोरता में उल्लेखनीय रूप से घरों को - और विस्तार से उन समुदायों को जिनमें वे स्थित हैं - प्रदर्शित करना होगा।

इस तरह के भेद भारतीय संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जहां कानूनी स्थिति सार्वजनिक सेवा प्रावधान के अधिकार प्रदान करती है; कोई भी स्लम पदनाम जो वैधानिकता पर जोर देता है, स्लम विशेषताओं वाले समुदायों की व्यापकता को कम आंकेगा (अग्रवाल, 2011) और संभवतः उच्चतम स्तर के बहिष्कार और नुकसान का अनुभव करने वाले समुदायों को नजरअंदाज कर देगा (सुब्बारामन एट अल।, 2012)। हालांकि स्लम पदनाम विसंगति के लिए प्रस्तावित स्पष्टीकरणों के बीच निर्णय लेना संभव नहीं है, और यह संभावना है कि एक से अधिक काम कर रहे हैं, यह वर्णनात्मक निष्कर्ष विकासशील देशों में क्षेत्र अभाव के माप और नीतिगत निहितार्थ को जटिल बनाता है।[29,30]

प्रतिगमन परिणाम, अर्थात् उम्र के अनुसार बच्चे की ऊंचाई और वजन व्यक्तिगत विशेषताओं के केवल एक स्लम परिभाषा जाल के साथ नकारात्मक रूप से जुड़ा हुआ है, क्षेत्र-स्तरीय अभाव और बाल स्वास्थ्य के बीच संबंधों का अध्ययन करने के लिए अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण की आवश्यकता की ओर इशारा करता है। स्लम में रहने के कई संभावित प्रतिकूल स्वास्थ्य प्रभावों (चावल और चावल, 2009) और शहरी क्षेत्रों में बीमारी और गरीबी को बनाए रखने के तंत्र (रैटन, 1995) का विवरण देने वाले साहित्य को देखते हुए, यह आश्चर्यजनक है कि अधिक मजबूत इन विश्लेषणों में "स्लम प्रभाव" को उजागर नहीं किया गया। ऐसा हो सकता है कि पड़ोस के प्रभाव बच्चों के स्वास्थ्य की तुलना में वयस्कों के स्वास्थ्य पर अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं, जैसा कि उप-सहारा अफ्रीका में पाया गया है (गुंथर और हार्टजेन, 2012)), या कि व्यक्तिगत और घरेलू विशेषताएं उम्र के हिसाब से बच्चे की ऊंचाई के लिए बहुत अधिक समीपस्थ और प्रासंगिक हैं (फ़िंक एट अल।, 2014)। विकसित देश के शहरों में पड़ोस का अपेक्षाकृत "छोटा" प्रभाव (व्यक्तिगत स्तर की विशेषताओं की तुलना में) भी पाया गया है (फिट्ज़पैट्रिक और लागोरी, 2003)।

विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा एकमात्र स्लम संकेतक क्यों हो सकती है जो खराब बाल स्वास्थ्य से जुड़ा है? एक संभावना यह है कि यह वर्तमान जीवन स्थितियों की घरेलू रिपोर्टिंग पर आधारित है, जो जनगणना की जानकारी की तुलना में नुकसान को बेहतर ढंग से पकड़ सकती है, जो सर्वेक्षण होने से लगभग पांच साल पहले एकत्र किए गए प्रशासनिक आंकड़ों पर आधारित थी। स्लम क्षेत्र स्वभाव से गतिशील होते हैं और उनकी पहचान की सटीकता बनाए रखने के लिए लगातार अपडेट की आवश्यकता होती है (मोंटाना एट अल।, आगामी); वास्तव में, बाल स्वास्थ्य माप के साथ-साथ एकत्र की गई जानकारी विशेष रूप से तत्काल आसपास के स्वास्थ्य खतरों के बारे में जानकारीपूर्ण हो सकती है।

यह भी हो सकता है कि जिस तरह से संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा में मलिन बस्तियों की विशेषता बताई गई है, वह विशेष रूप से शहरी नुकसान की विशेषताओं की पहचान करने के लिए उपयुक्त है जो खराब स्वास्थ्य का सबसे अधिक पूर्वानुमान हो सकता है। यहां प्रस्तुत परिणाम दर्शाते हैं कि संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा में शामिल कई व्यक्तिगत घटक खराब बाल स्वास्थ्य, अर्थात् आवास गुणवत्ता और भीड़-भाड़ से जुड़े हैं। जबकि कोई कल्पना कर सकता है कि आधुनिक फर्श या छत सामग्री का उपयोग बाढ़ और बीमारी के प्रसार के खिलाफ सुरक्षात्मक हो सकता है और साथ ही साफ करना आसान हो सकता है, यह भी संभव है कि आवास का प्रकार किसी अन्य, बिना मापे, पड़ोस के लाभ के लिए एक प्रॉक्सी के रूप में कार्य कर रहा हो। . इसी प्रकार, रहने की व्यवस्था का उच्च घनत्व संक्रामक रोग के प्रसार को बढ़ावा दे सकता है और क्षेत्र की अन्य विशेषताओं जैसे बड़ी मात्रा में कचरा या खुले में शौच का कारण बन सकता है। चूँकि इन परिभाषाओं की तुलना करने के लिए कोई स्वर्ण मानक नहीं है, इसलिए यह समझना संभव नहीं है कि इनमें से कौन सा स्पष्टीकरण काम में अंतर्निहित प्रक्रिया का सबसे अधिक संकेत है। हालाँकि, परिणाम क्षेत्र-स्तरीय गरीबी और स्वास्थ्य के बीच संबंधों को चलाने वाले अंतर्निहित तंत्र को पूरी तरह से समझने के लिए स्लम पदनाम में शामिल व्यक्तिगत घटकों की जांच के महत्व पर प्रकाश डालते हैं।

संक्षेप में, स्लम परिभाषाओं की तुलना करने के साथ-साथ विशेष रूप से भारतीय संदर्भ में बच्चों के स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव की जांच करने वाला यह पहला अध्ययन है। हम एक स्लम क्षेत्र का वर्णन करने के चार अलग-अलग तरीकों का वर्णन करते हैं, यहां तक कि केवल एक देश के भीतर भी, और प्रदर्शित करते हैं कि ये परिभाषाएं अक्सर उन्हीं घरों को स्लम निवास के रूप में पहचान नहीं करती हैं। जिस तरह से झुग्गी-झोपड़ी को परिभाषित किया गया है, उससे यह तय होता है कि झुग्गी-झोपड़ी में रहने और स्वास्थ्य के बीच कोई संबंध है या नहीं; स्लम निवास की प्रस्तुत परिभाषाओं में से केवल एक ही वास्तव में व्यक्तिगत और घरेलू स्तर की विशेषताओं को नियंत्रित करते समय बाल स्वास्थ्य से जुड़ी है, और यह संबंध इसके चार घटकों में से केवल 2 द्वारा संचालित होता प्रतीत होता है।भौमिक, 2012).

इसलिए स्वास्थ्य में अंतर-शहरी अंतरों की निरंतर जांच (मोंटगोमरी, 2009) की सिफारिश की जाती है, क्योंकि अधिक व्यापक स्वीकृति है कि मलिन बस्तियां समरूप संस्थाएं नहीं हैं (गौर एट अल।, 2013), लेकिन जटिल और गतिशील हैं। भविष्य के शोध का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र स्लम स्केल के उपयोग की जांच करना है, जो द्विभाजित स्लम माप की तुलना में अधिक जानकारी प्रदान कर सकता है। स्लम स्केल के उपयोग से यह जानकारी मिलेगी कि क्या स्लम निवास के नकारात्मक प्रभावों की संचयी प्रकृति है और/या स्लम प्रतिकूलता और स्वास्थ्य परिणामों के बीच एक गैर-रैखिक संबंध है, जो विशेष रूप से वंचित लोगों में सामान्य मानसिक विकारों के लिए पाया गया है। मुंबई में स्लम समुदाय (सुब्बारामन एट अल., समीक्षाधीन)।). आमतौर पर शहरी पर्यावरण के अध्ययन में पहले भी सूचकांकों का पता लगाया जा चुका है; डाहली और अडायर ने पाया कि, अनुदैर्ध्य डेटा का उपयोग करते हुए, शहरीता का एक पैमाना "शहरी-ग्रामीण द्वंद्व से बेहतर प्रदर्शन करता है" (डाहली और अडायर, 2008)। जबकि 2002 में संयुक्त राष्ट्र में शहरी संकेतकों पर एक विशेषज्ञ समूह की बैठक (यूएन-हैबिटेट शहरी सचिवालय और आश्रय शाखा, 2002) में एक स्लम सूचकांक प्रस्तावित किया गया था, लेकिन आगे की कार्रवाई नहीं की गई है।

इस मुद्दे पर नीतिगत बहस को सूचित करने के लिए मलिन बस्तियों पर और अधिक गंभीर शोध रुचि आवश्यक होगी (मार्क्स एट अल., 2013) और इसमें मलिन बस्तियों के विकास की निगरानी के लिए अनुदैर्ध्य डेटा (एंटविसल, 2007) दोनों का संग्रह शामिल होना चाहिए , साथ ही उपग्रह और भू-आधारित सत्यापन के साथ अन्य स्थानिक डेटा (मोंटाना एट अल., आगामी)। स्लम वृद्धि अपरिहार्य नहीं है (ओई और फुआ, 2007); शहर की सरकारें अपने क्षेत्र के आर्थिक विकास पथ को शहरी विकास, आवास और बेहतर जीवन की तलाश में शहरों में आने वाले व्यक्तियों और परिवारों की बुनियादी जरूरतों के साथ जोड़कर वंचित शहरी आबादी की ओर से रणनीतिक योजना और हस्तक्षेप की जिम्मेदारी ले सकती हैं और लेनी भी चाहिए।[30]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. अग्रवाल सिद्धार्थ. भारत में शहरी स्वास्थ्य की स्थिति; चयनित राज्यों और शहरों में सबसे गरीब चतुर्थक की बाकी शहरी आबादी से तुलना करना। पर्यावरण और शहरीकरण. 2011; 23 :13-28. [गूगल विद्वान]
2. अग्रवाल सिद्धार्थ, सत्यवदा अरविंद, कौशिक एस, कुमार राजीव। शहरीकरण, शहरी गरीबी और शहरी गरीबों का स्वास्थ्य: स्थिति, चुनौतियाँ और आगे का रास्ता। जनसांख्यिकी भारत. 2007; 36 :121-134. [गूगल विद्वान]
3. अग्रवाल सिद्धार्थ, तनेजा शिवानी। सभी मलिन बस्तियाँ समान नहीं हैं: शहरी गरीबों के बीच बाल स्वास्थ्य की स्थिति। भारतीय बाल रोग विशेषज्ञ. 2005; 42 :233-44. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
4. भान गौतम. नियोजित अवैधताएँ: दिल्ली में आवास और योजना की 'विफलता': 1947-2010। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक. 2013; XLVII :58-70. [गूगल विद्वान]
5. भौमिक सौम्यदीप. भारत ने राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन की योजनाओं की रूपरेखा तैयार की। लैंसेट. 2012; 380 :550. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
6. बोक्विएर फिलिप, बेगुय डोनाटियन, ज़ुलु एलिया एम, मुइंडी कान्यिवा, कोन्सिगा अदामा, ये याज़ौमे। क्या स्लम बस्तियों में प्रवासी बच्चों को अधिक स्वास्थ्य खतरों का सामना करना पड़ता है? नैरोबी, केन्या से साक्ष्य। शहरी स्वास्थ्य जर्नल. 2011; 88 (सप्ल 2):एस266-81। [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
7. ब्रॉकरहॉफ़ मार्टिन। बड़े शहरों में बच्चों का अस्तित्व: प्रवासियों के नुकसान। सामाजिक विज्ञान एवं चिकित्सा. 1995; 40 :1371-83. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
8. केस ऐनी, पैक्ससन क्रिस्टीना। कद और स्थिति: ऊंचाई, क्षमता और श्रम बाजार के परिणाम। राजनीतिक अर्थव्यवस्था का जर्नल. 2008; 116 :499-532. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
9. चन्द्रशेखर एस, मोंटगोमरी मार्क आर. अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण एवं विकास संस्थान (आईआईईडी) लंदन के लिए तैयार किया गया पेपर: आईआईईडी; 2009. भारत में गरीबी की परिभाषाओं का विस्तार: बुनियादी जरूरतें और शहरी आवास। [गूगल विद्वान]
10. क्लेलैंड जॉन, बर्नस्टीन स्टेन, एज़ेह एलेक्स, फाउंडेस एनीबल, ग्लेशियर अन्ना, इनिस जोलेन। परिवार नियोजन: अधूरा एजेंडा. नश्तर। 2006; 368 :1810-1827. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]

11. करी जेनेट, वोगल टॉम। विकासशील देशों में प्रारंभिक जीवन स्वास्थ्य और वयस्क परिस्थितियाँ। अर्थशास्त्र की वार्षिक समीक्षा. 2013; 5 :1-36. [गूगल विद्वान]
12. डेहली डेरेन लॉरेंस, अडायर लिंडा एस. शहरी पर्यावरण की मात्रा निर्धारित करना: शहरीता का एक पैमाना माप शहरी-ग्रामीण द्वंद्व से बेहतर प्रदर्शन करता है। सामाजिक विज्ञान एवं चिकित्सा. 2008; 64 :1407-1419. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
13. डी स्नाइडर, नेली सालगाडो वी, फ्रेल शेरोन, फोत्सो जीन, खादर ज़ेनब, मेरेसमैन सर्जियो, मोंगे पेट्रीसिया, पाटिल-देशमुख अनीता। सामाजिक स्थितियाँ और शहरी स्वास्थ्य असमानताएँ: अनुसंधान और कार्रवाई के माध्यम से शहरी परिदृश्य को बदलने की वास्तविकताएँ, चुनौतियाँ और अवसर। शहरी स्वास्थ्य जर्नल. 2011; 88 :1183-1193. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
14. डिएटन एंगस. ऊंचाई, स्वास्थ्य और विकास. राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी। 2007; 104 :13232-37. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
15. डिएटन एंगस. ऊंचाई, स्वास्थ्य और असमानता: भारत में वयस्कों की ऊंचाई का वितरण। अमेरिकी आर्थिक समीक्षा: कागजात और कार्यवाही। 2008; 98 :468-474. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
16. डीटन एंगस, ड्रेज़ जीन। भारत में भोजन और पोषण: तथ्य और व्याख्याएँ। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक. 2009; एक्सएलआईवी :42-65. [गूगल विद्वान]
17. देव अलका, बालक डेबोराह। शहरीकरण, महिलाएँ और वजन बढ़ना: भारत से साक्ष्य, 1998-2006। समीक्षा के अंतर्गत। [गूगल विद्वान]
18. डोरेलियन ऑड्रे, बाल्क डेबोरा, टॉड मेगन। शहरी क्या है? जनसांख्यिकीय और स्वास्थ्य सर्वेक्षण के साथ सैटेलाइट दृश्य की तुलना करना। जनसंख्या एवं विकास समीक्षा. 2013; 39 :413-439. [गूगल विद्वान]
19. डुफ़्लो एस्तेर. महिला सशक्तिकरण एवं आर्थिक विकास. आर्थिक साहित्य जर्नल. 2012; 50 :1051-79. [गूगल विद्वान]
20. एंटविसल बारबरा. लोगों को जगह पर रखना. जनसांख्यिकी। 2007; 44 :687-703. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
21. फिल्मकार डीओन, प्रिटचेट लैंट एच. व्यय डेटा के बिना धन प्रभाव का अनुमान लगाना - या आँसू: भारत के राज्यों में शैक्षिक नामांकन के लिए एक आवेदन। जनसांख्यिकी। 2001; 38 :115-32. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
22. फ़िंक गुंथर, अर्कू आर, मोंटाना लिविया। गरीबों का स्वास्थ्य: अनौपचारिक बस्तियों में रहने वाली महिलाएँ। घाना मेडिकल जर्नल. 2012; 46 :104-112. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
23. फ़िंक गुंथर, गुंथर इसाबेल, हिल केनेथ। विकासशील देशों में स्लम निवास और बाल स्वास्थ्य। जनसांख्यिकी। 2014:1-23. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
24. फिट्ज़पैट्रिक केविन एम, लैगरी मार्क। शहरी समाजशास्त्र में स्वास्थ्य को "स्थान" देना: शहर जोखिम और सुरक्षा के प्रतीक के रूप में। शहर और समुदाय. 2003; 2 :33-46. [गूगल विद्वान]
25. फोत्सो जीन क्रिस्टोफ़, क्लेलैंड जॉन, मबेरू ब्लेसिंग, मटुआ माइकल, एलुंगाटा पेट्रीसिया। जन्म अंतर और बाल मृत्यु दर: नैरोबी शहरी स्वास्थ्य और जनसांख्यिकीय निगरानी प्रणाली से संभावित डेटा का विश्लेषण। जे बायोसोक विज्ञान। 2013; 45 :779-98. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
26. गैल्स्टर जॉर्ज सी. पड़ोस प्रभाव: सिद्धांत और साक्ष्य। सेंट एंड्रयूज विश्वविद्यालय; स्कॉटलैंड, यूके: 2010। पड़ोस प्रभाव सिद्धांत, साक्ष्य और नीति निहितार्थ का तंत्र। [गूगल विद्वान]
27. गौर कीर्ति, केशरी कुणाल, जो विलियम। क्या मलिन बस्तियों या गैर-मलिन बस्तियों में रहने से महिलाओं की पोषण स्थिति प्रभावित होती है? भारतीय मेगा शहरों से साक्ष्य। सामाजिक विज्ञान एवं चिकित्सा. 2013; 77 :137-46. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
28. गोली श्रीनिवास, अरोकियासामी पी, चट्टोपाध्याय अपराजिता। भारत में चयनित शहरों में रहने और स्वास्थ्य की स्थिति: राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के लिए प्राथमिकताएँ निर्धारित करना। शहरों। 2011; 28 :461-469. [गूगल विद्वान]
29. ग्रैग्नोलाटी मिशेल, शेखर मीरा, दास गुप्ता मोनिका, ब्रेडेनकैंप कैरीन, ली यी-क्योंग। स्वास्थ्य, पोषण और जनसंख्या चर्चा पत्र। विश्व बैंक; 2005. भारत के कुपोषित बच्चे: सुधार और कार्रवाई का आह्वान। [गूगल विद्वान]
30. ग्रुबनेर ओलिवर, खान एमडी मोबारक एच, लॉटेनबैक स्वेन, मुलर डैनियल, क्रेमर अलेक्जेंडर, लेक्स टोबिया, होर्स्टर्ट पैट्रिक। ढाका की मलिन बस्तियों में स्व-रेटेड मानसिक स्वास्थ्य का एक स्थानिक महामारी विज्ञान विश्लेषण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ हेल्थ जियोग्राफ़िक्स. 2011; 10 :36-50. [पीएमसी मुक्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]

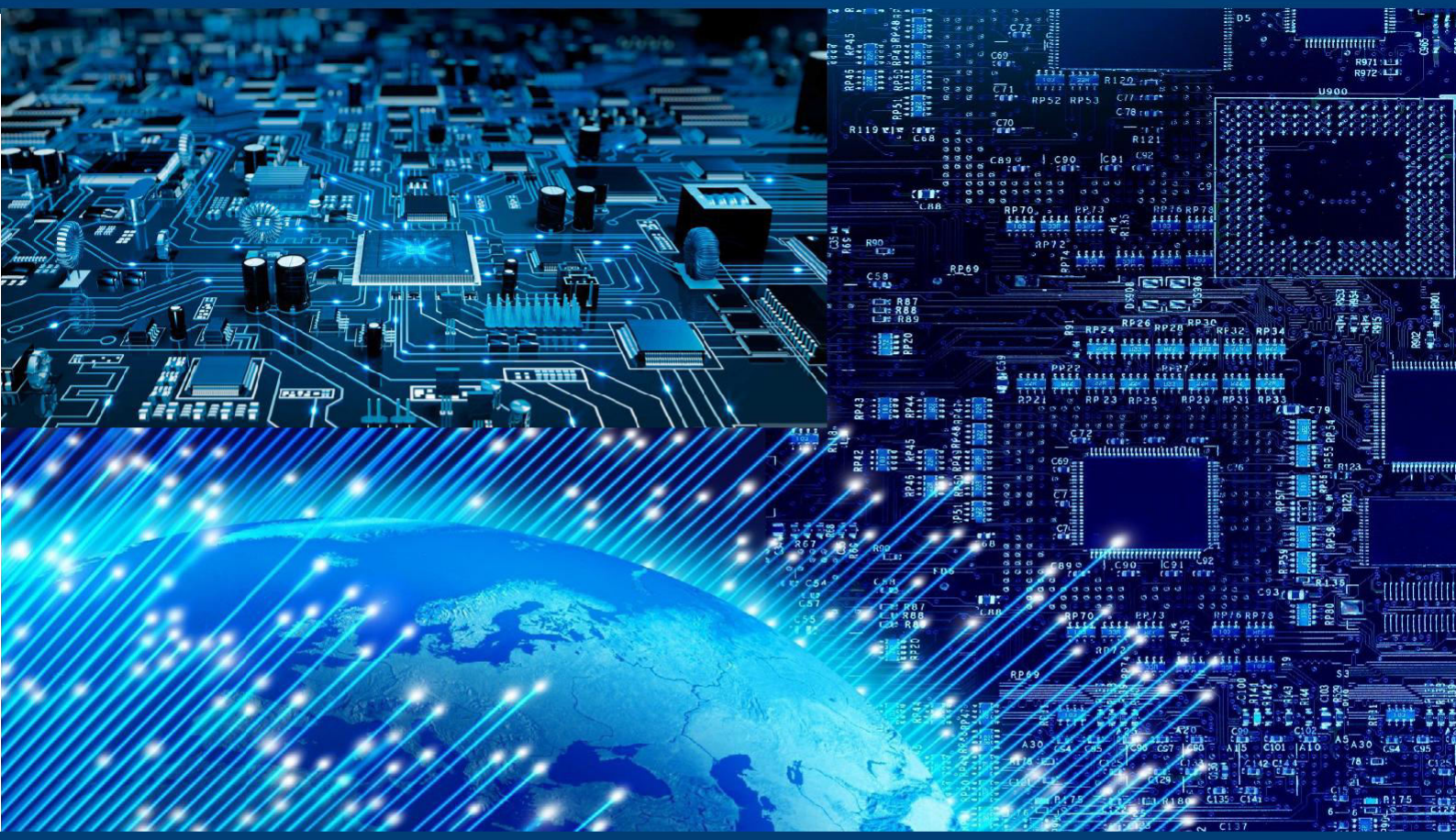

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |